रविवारीय

सरकारी अधिकारियों के लिए सोशल मीडिया आचार संहिता

डॉ. प्रियंका सौरभ
पीएचडी (राजनीति विज्ञान)

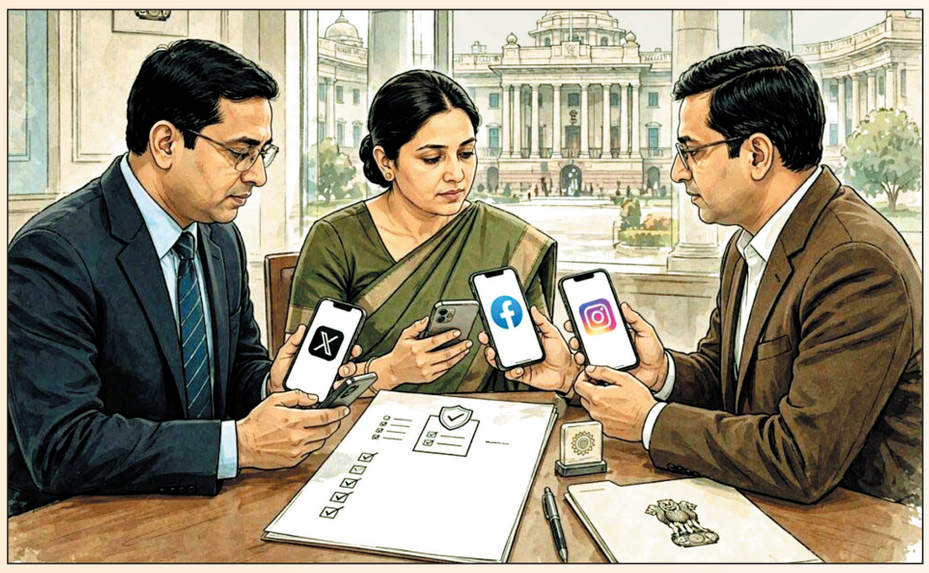

सोशल मीडिया के बढ़ते प्रभाव ने लोगों के संवाद करने, सूचना प्राप्त करने और खुद को दुनिया के सामने पेश करने के तरीके को बदल दिया है. जी हां, सरकारी अधिकारी भी इससे अछूते नहीं हैं. सोशल मीडिया, चाहे वह रील्स हों, छोटे वीडियो हों, व्यक्तिगत पोस्ट हों, कहानियां हों या विचार हों, सरकारी कर्मचारियों की दिनचर्या का अभिन्न अंग बन गया है. डिजिटल प्लेटफॉर्म सरकार और नागरिकों के बीच बेहतर संचार की अपार संभावनाएं प्रदान करते हैं, लेकिन सरकारी अधिकारियों द्वारा इनका अत्यधिक उपयोग या दुरुपयोग प्रशासनिक अनुशासन, निष्पक्षता, जनविश्वास और सार्वजनिक गरिमा से संबंधित महत्वपूर्ण प्रश्न खड़े करता है. सरकारी अधिकारियों के लिए प्रस्तावित सोशल मीडिया आचार संहिता का मसौदा सही समय पर आया है. सवाल यह नहीं है कि 'क्या अधिकारियों को सोशल मीडिया का इस्तेमाल करने की अनुमति दी जानी चाहिए?' उन्हें अनुमति दी जानी चाहिए. सवाल यह है कि सार्वजनिक पदों पर आसीन लोगों को सोशल मीडिया का इस्तेमाल किस तरह करना चाहिए.

सरकारी कर्मचारियों के बीच प्रचलित आचरण के नियम उस युग में लिखे गए थे जब सोशल मीडिया का अस्तित्व नहीं था. जाहिर है, इन नियमों को बनाने वालों ने इनकी कल्पना नहीं की होगी, क्योंकि वे ऐसे प्लेटफॉर्म के विकास की कल्पना नहीं कर सकते थे जो किसी एक व्यक्ति को पल भर में एक वीडियो प्रकाशित करने की अनुमति देता है, जिसे लाखों लोग देख सकते हैं और लाखों लोगों की राय का समर्थन प्राप्त कर सकते हैं.

ड्यूटी के दौरान सोशल मीडिया का उपयोग सबसे बड़ी चिंताओं में से एक है. लोक सेवकों का कार्य सार्वजनिक कार्यों पर काम करना, सार्वजनिक व्यवसायियों की सेवा करना, सार्वजनिक नीतियों को लागू करना और प्रशासनिक दक्षता का प्रबंधन करना है. यदि किसी कर्मचारी का कार्य समय मनोरंजन से संबंधित सामग्री देखने, बनाने या साझा करने में व्यतीत होता है, तो इससे उत्पादकता और अंततः सार्वजनिक सेवा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है. सरकार को सोशल मीडिया को अपने कर्तव्यों के निर्वाह में बाधा नहीं बनने देना चाहिए.

यह मान लेना भी गलत होगा कि अधिकारियों की सोशल मीडिया पर की जाने वाली सभी गतिविधियाँ अवांछनीय हैं. सोशल मीडिया अब शासन का एक महत्वपूर्ण साधन बन गया है. जिला प्रशासक, पुलिस अधिकारी, शिक्षक, स्वास्थ्य अधिकारी और अन्य सरकारी कर्मचारी जैसे सार्वजनिक अधिकारी सरकारी कार्यक्रमों, आपातकालीन सूचनाओं, जन जागरूकता पहलों और नागरिक सेवाओं के बारे में उपयोगकर्ताओं से जुड़ने के लिए डिजिटल प्लेटफॉर्म का उपयोग करते हैं. आपदाओं, महामारियों और अन्य आपात स्थितियों के समय प्रशासन और नागरिकों के बीच त्वरित और प्रत्यक्ष संचार में सोशल मीडिया सहायक हो सकता है.

प्रस्तावित संहिता को जिम्मेदार आधिकारिक पत्राचार और वैध उपयोग और दुरुपयोग (जहां यह सार्वजनिक क्षेत्र की गरिमा या निष्पक्षता को कम नहीं करता है) के बीच संतुलन बनाए रखने की आवश्यकता है. व्यक्तिगत प्रचार भी एक चिंता का विषय है. सरकारी अधिकारी कभी-कभी ऐसी जानकारी प्रकाशित करते हैं जो सरकारी गतिविधियों, जैसे सार्वजनिक कार्यक्रमों, प्रशासनिक गतिविधियों या सरकारी कार्यक्रमों में उनकी भागीदारी को दर्शाती है. नागरिकों को सरकारी कार्यों के बारे में शिक्षित करने और सरकार के प्रतिनिधि के रूप में स्वयं का प्रचार करने के बीच का अंतर स्पष्ट है. लोक प्रशासन व्यक्तिगत ब्रांड बनाने की गतिविधि नहीं है. जब कोई अधिकारी अपनी छवि बनाने की ओर अग्रसर होता है, तो सार्वजनिक सेवा और आत्म-प्रचार के बीच का अंतर धुंधला होने लगता है. सरकारी अधिकारियों को सरकार और नागरिकों द्वारा प्रदत्त शक्ति प्राप्त होती है. इसलिए उन्हें सार्वजनिक संसाधनों, सरकारी योजनाओं या आधिकारिक पदों का उपयोग व्यक्तिगत प्रसिद्धि के लिए सोशल मीडिया पर प्रचारित नहीं करना चाहिए.

लेकिन, किसी भी सोशल मीडिया आचार संहिता का आधार संवैधानिक मूल्य होने चाहिए. सरकारी कर्मचारी जब सार्वजनिक सेवा में आते हैं तो वे नागरिक बने रहते हैं, और उनकी नागरिकता और लोकतांत्रिक अधिकारों को छीना नहीं जा सकता. उनके कुछ मूलभूत अधिकार होते हैं जिन्हें केवल उनकी सेवा के संदर्भ में ही उचित रूप से प्रतिबंधित किया जा सकता है. कोई भी आचार संहिता जो व्यक्तिगत विचारों की वैध अभिव्यक्ति को प्रतिबंधित करे, आलोचना को हतोत्साहित करे या अधिकारियों को असहज करे, हानिकारक होगी. लक्ष्य सरकारी कर्मचारियों को बोलने से रोकना नहीं होना चाहिए, बल्कि उनके लिए ज़िम्मेदार सीमाएँ निर्धारित करना होना चाहिए. अधिकारियों को गोपनीय जानकारी के खुलासे, राजनीतिक प्रचार, अपुष्ट जानकारी साझा करने, घृणास्पद भाषण, उत्पीड़न, हितों के टकराव, आधिकारिक तस्वीरों और लोगो के दुरुपयोग, संवेदनशील दस्तावेजों के खुलासे और सरकारी नीति के अनुचित प्रस्तुतीकरण से संबंधित सभी मुद्दों की स्पष्ट समझ होनी चाहिए.

संहिता में व्यक्तिगत और आधिकारिक बयान के बीच अंतर स्पष्ट करना भी आवश्यक है. यदि कोई नागरिक सरकारी अधिकारी के रूप में व्यक्तिगत बयान देता है, तो उसे सरकार की आधिकारिक आवाज़ माना जा सकता है, भले ही अधिकारी का इरादा सरकार का प्रतिनिधि बनने का न हो. इसलिए, अस्वीकरण देना, पारदर्शिता बनाए रखना और ज़िम्मेदारी से संवाद करना अत्यंत महत्वपूर्ण है. साथ ही, अधिकारियों को किसी ऐसे मत के लिए दंडित नहीं किया जाना चाहिए जो अलोकप्रिय हो, लेकिन कानूनी हो.प्रशिक्षण उतना ही महत्वपूर्ण होगा जितना कि नियमन. केवल आचरण नियमों का एक सरल समूह समस्या का समाधान नहीं कर पाएगा. सरकारी विभागों में डिजिटल नैतिकता प्रशिक्षण की आवश्यकता है, विशेषकर उन युवा सरकारी कर्मचारियों के लिए जो स्मार्टफोन और लघु वीडियो प्लेटफार्मों के युग में सार्वजनिक सेवा में प्रवेश कर रहे हैं.

> अंततः, सोशल मीडिया आचार संहिता केवल रील्स, वीडियो या स्क्रीन टाइम से कहीं अधिक है. यह जनता और डिजिटल उपस्थिति के बीच विकसित हो रहे संबंधों से संबंधित है. आज के तीव्र गति वाले परिवेश में, जहाँ किसी अधिकारी का पोस्ट मिनटों में हजारों लोगों तक पहुँच सकता है, जिम्मेदार डिजिटल व्यवहार जिम्मेदार प्रशासनिक व्यवहार का एक अभिन्न अंग बन गया है. अतः सरकार को एक उचित, संतुलित और पारदर्शी सोशल मीडिया आचार संहिता बनानी चाहिए. इसमें अधिकारियों की गोपनीयता का सम्मान किया जाना चाहिए, आधिकारिक दुरुपयोग की संभावनाओं को रोका जाना चाहिए, कार्यालय समय के दौरान कार्य-कर्मचारियों के बीच अनुशासन की भावना सुनिश्चित की जानी चाहिए और कानूनी सीमाओं के भीतर व्यक्तिगत अभिव्यक्ति को बढ़ावा दिया जाना चाहिए. ये नियम सभी पर समान रूप से लागू होने चाहिए और इनमें मनमानी कार्रवाई से निपटने के लिए स्पष्ट प्रक्रियाएं होनी चाहिए. सरकारी कर्मचारियों को यह समझना चाहिए कि सोशल मीडिया निजी है, लेकिन सार्वजनिक पद नहीं. वहीं, सरकार को यह स्वीकार करना चाहिए कि जिम्मेदारी से किया गया डिजिटल जुड़ाव सुशासन को कमजोर करने के बजाय उसे और मजबूत कर सकता है. सही तरीका डिजिटल स्वतंत्रता या अत्यधिक नौकरशाही नहीं है. भारत में सार्वजनिक सेवा में जिम्मेदार डिजिटल नागरिकता की संस्कृति की आवश्यकता है.

व्यंग्य

लाठी-भैंस और सियासत

रवि उपाध्याय
(लेखक व्यंगकार और राजनीतिक समीक्षक हैं)

संस्कृत में एक सुभाषित है जिसमें कहा गया है कि संघे शक्ति युगे युगे. इसके अलावा एक संस्कृत उक्ति में संघो शक्ति कल युगे भी कहा गया है. दोनों उक्तियों में मुख्य विशेषण संगठन है. संगठन को ही शक्ति का पर्याय बताया गया है. इसका लाइव डिमांस्ट्रेशन हम पिछले दिनों दिल्ली के जंतर मंतर पर देख चुके हैं. यहाँ कॉकरोचों के सामने सर्व शक्ति मान सरकार और देश की सबसे बड़ी अदालत ने भी कानून की किताबों को बस्ते में बांध कर उसी स्टोर रूम में बंद कर दिया जिसमें दशकों पुराने केसों की मिसले भरी हैं. इतना ही नहीं अपने दफ्तरों से उन आइनों को हटा दिया जिनमें वे अपने को निहारा करते होंगे .संस्कृत के यह दोनों उक्तियाँ उस देशी कहावत को पुख्ता करतीं हैं जिसमें बताया गया है कि जिस की लाठी होती है भैंस भी उसी की होती है.

दिल्ली में देखा गया कि लाठी किसके पास थी और कौन कानून रूपी भैंस को अपने तरीके से घेर कर संसद के पास ले जाकर बांध आया. ताज्जुब की बात तो यह रही की जिस सरकार ने रावलपिंडी और इस्लामाबाद का दाना पानी बंद कर तीन दिनों में मैच खत्म कर दिया उसने इतनी आसानी से कॉकरोचों के सामने घुटने टेक दिए. इस मौके पर शोले ?िल्म का गब्बर सिँह का वो डायलग याद आता है जिसमें वह कहता क्या सोच कर आए थे कि सरदार खुश होगा .नाक कटा दिए. यहाँ सरदार जनता को समझा जाए और गब्बर? तो भैया खुद समझ लो सब हम से ही खुलासा करवा के रहेगा. हमारा गब्बर दिल्ली को छोड़ सरहदी प्रदेशों में घूम रहा है. उसने ठान लिया है कि वह कृष्ण की लाख समझाइश के बाद अपनों पर हथियार नहीं उठाएगा. अब यह आप तय करो की यह बाहदुरी है या कुछ और... जिसकी लाठी वाली देशी कहावत में लाठी का मतलब शायद संघ या संगठन और एकता है .भैंस शब्द का उल्लेख शायद सरकार,व्यवस्था या प्रशासन के लिए किया गया है. दिल्ली में जो घटना घटी उसने यह बता दिया कि कॉकरोच रूपी शक्ति ने भैंस को जैसा चाहा वैसा घेरा. हम सदियों से यह सुनते आ रहे हैं कि एक रहोगे तो ठीक रहोगे .कुछ लोग ठीक शब्द के स्थान पर नेक शब्द का उपयोग करते हैं. पर यह पत्थर की लकीर है कि मिलजुलकर रहने में ही भलाई है .यही बात उत्तरप्रदेश के महाराज जी ने अपने अंदाज में कही थी, कि बटोगे तो कटोगे. इसका ताजा ताजा उदाहरण हमारे सामने दिल्ली के जंतर मंतर का है .वहां दूर दूर से तिलचट्टे आए थे. यह दुनिया के लिए अनोखी घटना थी कि देश की राजधानी में जहाँ एक से एक बढ़कर बड़े बड़े लोकतंत्र के सूरमा रहते हैं.

उनको गुमान रहता है कि वे कानून बनाते हैं उन्ही के सामने कानून को पत्थरों से डंडो से पीटा जा रहा था वही जंतर मंतर पर संसद पर चढ़ाई करने की मंशा पालने वालों के सामने दण्डवन्त हो कर उनकी हौसला आफजाई कर रहे थे. काकरोचों का समागम हो रहा था .दूर दूर से लोग इस समागम को देखने आ रहे थे. इनका इतना भाषाई आतंक था कि सरकार तो सरकार देश की सबसे बड़ी अदालत ने भी घुटने टेक दिए. अभी तक हमने कॉकरोचों से महिलाओं को डरते हुए देखा है पर यह पहली बार हुआ कि कॉकरोच से सरकार और मी लार्ड भी डर रहे थे. इसी का डर का असर था कि सरकार ने इनकी आगे पीछे की सब खताएं माफ कर दीं. इसी का असर है कि अब इन तिलचट्टों का अश्वमेघ यज्ञ का घोड़ा देश के अन्य सूबों में धूम मचा रहा है. सरकारें हैं कि यह सब टुकुर- टुकुर देख रहीं हैं.

कॉकरोचों द्वारा धमकी दी जा रही हैं कि धर्मेंदर का मान मर्दन करके आ रहें हैं तो भैया तुम किस खेत की मूली हो. मजेदार यह है कि कॉकरोचों की नाक में नकेल राजपुताना के लोगों डाल दी. हालत यह हो गई कि जिन महंगी महंगी कारों में आए थे वो लेकर भागना पड़ा .यह कहा गया है कि समरथ को नहीं दोष गौसाई.

कक्षा के बाहर शिक्षक की असल भूमिका

सय्यद असीम अली

शिक्षक केवल वह नहीं होता जो कक्षा में खड़े होकर विद्यार्थियों को पाठ पढ़ाए. असली शिक्षक वह है जो समाज को देखने की दृष्टि देता है, सवाल पूछने की आदत पैदा करता है और ज्ञान को आने वाली पीढ़ियों तक पहुंचाने का माध्यम बनता है. शिक्षक दिवस पर ऐसे ही विद्वानों और ज्ञान-साधकों को याद करना हमारी बौद्धिक विरासत को सम्मान देना है. भोपाल के इतिहास, समाज, शिक्षा और आर्थिक विकास को समझने में डॉ. सय्यद अशफ़ाक़ अली का योगदान इसी दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय है.

डॉ. सय्यद अशफ़ाक़ अली उन शिक्षाविदों में रहे, जिन्होंने अध्यापन को केवल नौकरी नहीं बल्कि समाज निर्माण का माध्यम माना. उनका जीवन इस बात का उदाहरण है कि एक शिक्षक की भूमिका कक्षा की चारदीवारी से कहीं आगे तक जाती है. उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में संस्थाओं को मजबूत करने के साथ-साथ शोध और लेखन के माध्यम से भोपाल और मध्य प्रदेश के सामाजिक-आर्थिक इतिहास को दस्तावेजी रूप देने का महत्वपूर्ण कार्य किया.

शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान- पूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा ने स्व. डॉ. सय्यद अशफ़ाक़ अली को शासकीय हमीदिया कॉलेज, भोपाल में प्रोफेसर के पद से प्रतिनियुक्ति पर सेफिया कॉलेज में नियुक्त कराया. वर्ष 1960 में उन्होंने निजी सेफिया कॉलेज, भोपाल के प्राचार्य का दायित्व संभाला. लगभग 18 वर्ष 2 माह तक प्राचार्य के रूप में सेवाएं देने के बाद वे वहीं से सेवानिवृत्त हुए. वे बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल के प्रारंभिक डीन भी रहे. डॉ. अली ने अपने शोध और लेखन के माध्यम से भोपाल को इसी व्यापक दृष्टिकोण से समझने का प्रयास किया. उन्होंने इतिहास को केवल राजाओं, नवाबों और राजनीतिक घटनाओं तक सीमित नहीं रखा, बल्कि समाज और अर्थ व्यवस्था के बदलते स्वरूप को भी अध्ययन का हिस्सा बनाया. उनकी चर्चित पुस्तक 'Bhopal - Past and Present' भोपाल के इतिहास और सामाजिक जीवन को समझने वाली महत्वपूर्ण कृतियों में शामिल है.

डा. अशफाक अली का शिक्षा में अनमोल योगदान

इतिहास को वर्तमान से जोड़ने का प्रयास- डॉ. अशफ़ाक़ अली की विशेषता यह थी कि उनके लिए इतिहास केवल बीते समय की कहानी नहीं था. वे इतिहास को वर्तमान को समझने का माध्यम मानते थे. भोपाल की बेगमों की विरासत, उसकी झीलें, उसकी तहजीब, साझा संस्कृति, पुराने बाजार, शिक्षा संस्थान और सामाजिक जीवन—इन सभी को समझने के लिए केवल मौखिक स्मृतियां पर्याप्त नहीं हैं. इनके साथ दस्तावेजी शोध और तथ्यात्मक अध्ययन भी आवश्यक हैं. इसीलिए उनकी पुस्तकों का महत्व आज भी बना हुआ है. किसी शोधकर्ता का वास्तविक योगदान तब सामने आता है जब उसका काम उसके समय से आगे जाकर आने वाली पीढ़ियों के लिए उपयोगी साबित हो.

नई पीढ़ी के लिए अलग सोचः

नई पीढ़ी को भोपाल के इतिहास से जोड़ना जरूरी- आज भोपाल तेजी से बदल रहा है. पुराने भोपाल के साथ आधुनिक और विस्तारित भोपाल अपनी नई पहचान बना चुका है. नई सड़कें, नई कॉलोनियां, आधुनिक संस्थान और बदलती जीवनशैली शहर के विकास की कहानी कह रहे हैं. लेकिन विकास के साथ अपनी जड़ों को जानना भी उतना ही जरूरी है. नई पीढ़ी को यह जानना चाहिए कि जिस भोपाल में वह आज रह रही है, उसकी सामाजिक और सांस्कृतिक नींव कैसे तैयार हुई. किस तरह शिक्षा संस्थानों ने शहर के विकास में भूमिका निभाई, किस तरह विभिन्न समुदायों ने मिलकर भोपाल की पहचान बनाई और किस तरह आर्थिक एवं सामाजिक बदलावों ने शहर के स्वरूप को बदला. ऐसे समय में डॉ. सय्यद अशफ़ाक़ अली जैसे विद्वानों का लेखन नई पीढ़ी के लिए एक महत्वपूर्ण सेतु बन सकता है.

शिक्षक की सबसे बड़ी पहचान- एक शिक्षक की सबसे बड़ी उपलब्धि यह नहीं होती कि उसके कितने विद्यार्थी परीक्षा में सफल हुए. उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि यह होती है कि उसने कितने लोगों में सोचने, सवाल करने और सीखते रहने की इच्छा पैदा की. डॉ. सय्यद अशफ़ाक़ अली की विद्वतापूर्ण यात्रा को इसी दृष्टि से देखा जाना चाहिए. उन्होंने अपने विद्यार्थियों को शिक्षा दी, संस्थाओं को दिशा दी और अपनी पुस्तकों के माध्यम से समाज की कई पीढ़ियों को ज्ञान उपलब्ध कराया. उनका लेखन एक पीढ़ी के अनुभवों को दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाने वाला माध्यम बन गया.

विरासत को सुरक्षित रखना भी हमारी जिम्मेदारी- भोपाल की ऐतिहासिक विरासत केवल पुरानी इमारतों, महलों और स्मारकों में सुरक्षित नहीं है. वह पुस्तकों, दस्तावेजों, शोध और स्मृतियों में भी मौजूद है. इसलिए आवश्यकता है कि डॉ. सय्यद अशफ़ाक़ अली की पुस्तकों और शोध कार्य को नई पीढ़ी तक पहुंचाया जाए. विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में उनके कार्य पर चर्चा हो, शोधार्थी उनकी पुस्तकों का अध्ययन करें और भोपाल के इतिहास पर काम करने वाले युवा शोधकर्ताओं को इन स्रोतों से परिचित कराया जाए. किसी शहर का इतिहास तभी जीवित रहता है, जब उसकी अगली पीढ़ी उसे पढ़ती, समझती और आगे बढ़ाती है.

शिक्षक दिवस पर एक प्रेरणा- आज शिक्षा का स्वरूप तेजी से बदल रहा है. डिजिटल माध्यम, इंटरनेट और कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने जानकारी तक पहुंच को बेहद आसान बना दिया है. लेकिन जानकारी और ज्ञान में अंतर हमेशा रहेगा. जानकारी हमें बताती है कि क्या हुआ.शिक्षा हमें समझाती है कि ऐसा क्यों हुआ.

डिजिटल चौपाल-हर संसदीय क्षेत्र की अपनी जनसभा

चुनाव से आगे, संवाद से आगे—जनता को लोकतंत्र की निरंतर प्रक्रिया से जोड़ने का समय

डॉ. अंकिता त्रिपाठी

लोकतंत्र की सफलता केवल इस बात से तय नहीं होती कि चुनाव कितने निष्पक्ष हुए और कितने लोगों ने मतदान किया. लोकतंत्र की वास्तविक सफलता इस बात में है कि चुनाव के बाद नागरिक और उसके निर्वाचित प्रतिनिधि के बीच संवाद कितना जीवंत, निरंतर और जवाबदेह बना रहता है. भारत ने प्रतिनिधि लोकतंत्र के माध्यम से एक विशाल और विविध समाज को एक राजनीतिक व्यवस्था में जोड़ा है. लेकिन आज तकनीक के युग में हमारे सामने यह अवसर है कि प्रतिनिधि लोकतंत्र को समाप्त किए बिना उसमें नागरिकों की अधिक सार्थक भागीदारी जोड़ी जाए. इसी विचार से डिजिटल चौपाल की अवधारणा जन्म लेती है.

भारत की लोकतांत्रिक चेतना में चौपाल और ग्रामसभा का अपना विशेष स्थान रहा है. गाँव के लोग एक स्थान पर बैठते थे, अपनी समस्याएँ रखते थे, दूसरे की बात सुनते थे और सामुदायिक विषयों पर विचार करते थे. यह व्यवस्था आधुनिक संसद जैसी विधायी संस्था नहीं थी, लेकिन उसमें लोकतंत्र का एक मूल तत्व मौजूद था—जिस व्यक्ति पर निर्णय का प्रभाव पड़ना है, उसकी बात सुनी जाए. आज भारत का आकार, जनसंख्या और प्रशासनिक जटिलता इतनी बढ़ चुकी है कि उसी स्वरूप की भौतिक चौपाल पूरे संसदीय क्षेत्र के लिए संभव नहीं है. लेकिन उसकी मूल भावना को आधुनिक तकनीक के माध्यम से पुनर्जीवित किया जा सकता है. यहीं से प्रश्न उठता है—क्या प्रत्येक संसदीय क्षेत्र की अपनी एक डिजिटल जनसभा हो सकती है?

एक ऐसी डिजिटल जनसभा, जहाँ उस क्षेत्र के सत्यापित नागरिक अपने स्थानीय प्रश्न उठा सकें, महत्वपूर्ण राष्ट्रीय विषयों पर अपनी राय व्यक्त कर सकें, संसद में प्रस्तुत विधेयकों को सरल भाषा में समझ सकें और अपने निर्वाचित प्रतिनिधि की गतिविधियों से लगातार परिचित रह सकें. आज चुनाव के समय नागरिक अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है. वह अपने मत से प्रतिनिधि चुनता है और उसे पाँच वर्षों के लिए संसद में भेजता है. लेकिन चुनाव के बाद नागरिक की भूमिका काफी सीमित हो जाती है. वह यह जान सकता है कि उसका सांसद क्या कर रहा है, लेकिन उसके पास अपनी सामूहिक राय को व्यवस्थित रूप से सांसद तक पहुँचाने का कोई मजबूत, संस्थागत और निरंतर माध्यम सामान्यतः नहीं होता. यहीं डिजिटल चौपाल इस दूरी को कम करने का माध्यम बन सकती है.

मैं भारत का नागरिक हूँ-भाग 3

शायद आने वाले समय में प्रत्येक संसदीय क्षेत्र की अपनी एक डिजिटल चौपाल हो—जहाँ नागरिक की आवाज दर्ज हो, प्रतिनिधि की जवाबदेही दिखाई दे और संसद तक जनता की राय पहुँचने का एक व्यवस्थित रास्ता बने. चौपाल की आत्मा वही रहे, केवल उसका माध्यम बदल जाए. गाँव की चौपाल से डिजिटल चौपाल और डिजिटल चौपाल से संसद तक—यही भारत के सहभागी लोकतंत्र की अगली यात्रा हो सकती है. क्योंकि लोकतंत्र में नागरिक केवल मतदाता नहीं है. वह जनादेश का स्रोत, शासन का सहभागी और प्रतिनिधि की जवाबदेही का आधार भी रहेगी और तब भारत का नागरिक केवल चुनाव के दिन यह नहीं कहेगा— मैंने अपना वोट दे दिया है.

मान लीजिए किसी संसदीय क्षेत्र में शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, रोजगार, पर्यावरण, सड़क, जल या किसी अन्य विषय को लेकर व्यापक समस्या है. वर्तमान व्यवस्था में नागरिक अलग-अलग स्तरों पर शिकायत कर सकते हैं, जनप्रतिनिधि से मिल सकते हैं या स्थानीय प्रशासन के सामने अपनी बात रख सकते हैं. लेकिन यदि डिजिटल चौपाल में इन समस्याओं को प्रमाणित नागरिकों द्वारा दर्ज करने और उनकी प्राथमिकता तय करने की व्यवस्था हो, तो सांसद के सामने पूरे निर्वाचन क्षेत्र की समस्याओं का एक व्यवस्थित जन-मानचित्र उपलब्ध हो सकता है. उदाहरण के लिए, यदि किसी क्षेत्र के हजारों नागरिक यह दर्ज करते हैं कि सिंचाई, पेयजल या रोजगार उनकी प्रमुख चिंता है, तो यह केवल कुछ व्यक्तियों की शिकायत नहीं रहेगी; वह उस संसदीय क्षेत्र की सामूहिक प्राथमिकता के रूप में सामने आ सकती है. सांसद उस विषय को संसद में उठा सकता है, संबंधित मंत्रालय के समक्ष रख सकता है और नागरिकों को यह जानकारी भी दे सकता है कि उस विषय पर क्या प्रयास किए गए.

इससे लोकतंत्र में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन आएगा- शिकायत से भागीदारी और भागीदारी से जवाबदेही की ओर. डिजिटल चौपाल का दूसरा और अधिक महत्वपूर्ण उपयोग कानून निर्माण के क्षेत्र में हो सकता है. संसद में जब कोई महत्वपूर्ण विधेयक प्रस्तुत हो, तो उसकी जानकारी नागरिकों के लिए सरल भाषा में उपलब्ध कराई जा सकती है. विधेयक के उद्देश्य, प्रमुख प्रावधान, संभावित प्रभाव और पक्ष-विपक्ष के तर्क नागरिकों के सामने रखे जा सकते हैं. इसके बाद संसदीय क्षेत्र के सत्यापित नागरिक अपनी राय दे सकते हैं. यह राय बाध्यकारी न होकर सांसद के लिए एक लोकतांत्रिक परामर्श का आधार बन सकती है.

इस व्यवस्था का अर्थ यह नहीं होगा कि सांसद का संवैधानिक विवेक समाप्त हो जाए. सांसद को संसद में स्वतंत्र रूप से विचार करने, बहस करने और मतदान करने का अधिकार और दायित्व बना रहेगा. लेकिन उसके पास अपने निर्वाचन क्षेत्र की प्रमाणित जनभावना भी होगी. यदि वह उस जनभावना के अनुरूप मतदान करता है तो उसके निर्णय का सामाजिक आधार और मजबूत होगा; यदि वह अलग निर्णय लेता है तो वह अपने नागरिकों के सामने उसके कारण स्पष्ट कर सकता है. यहीं डिजिटल चौपाल प्रतिनिधित्व को जवाबदेही से जोड़ने का माध्यम बन सकती है.

डिजिटल चौपाल का सबसे महत्वपूर्ण परिणाम शायद यह होगा कि राजनीति का संबंध केवल चुनाव से नहीं रहेगा. वर्तमान में मतदाता प्रायः पाँच वर्ष में एक बार अपने प्रतिनिधि का मूल्यांकन करता है. डिजिटल चौपाल के माध्यम से वह पूरे कार्यकाल में अपने प्रतिनिधि की भूमिका को देख सकेगा. सांसद ने कितने स्थानीय मुद्दे उठाए, किन विषयों पर संसद में हस्तक्षेप किया, महत्वपूर्ण विधेयकों पर क्या रुख अपनाया और क्षेत्र के नागरिकों द्वारा उठाए गए मुद्दों पर क्या कार्रवाई की—इन सबकी सार्वजनिक जानकारी उपलब्ध हो सकती है. इससे चुनावी राजनीति में भी सकारात्मक परिवर्तन आ सकता है. तब उम्मीदवार केवल चुनाव के समय किए गए वादों के आधार पर नहीं, बल्कि पिछले पाँच वर्षों के वास्तविक काम और जनसंवाद के आधार पर भी मूल्यांकित होगा. हालाँकि यह भी स्वीकार करना होगा कि हर विषय पर जनमत एक जैसा नहीं होगा. किसी संसदीय क्षेत्र में नागरिकों की राय विभाजित हो सकती है. राष्ट्रीय हित और स्थानीय हित में अंतर हो सकता है. विशेषज्ञों की राय जनता की तत्काल भावना से अलग हो सकती है. ऐसे मामलों में सांसद की संवैधानिक जिम्मेदारी और विवेक का महत्व बना रहेगा. इसलिए डिजिटल चौपाल का उद्देश्य सांसद को जनता के डिजिटल निर्देशों का मात्र पालनकर्ता बनाना नहीं, बल्कि उसे अधिक सूचित और जवाबदेह प्रतिनिधि बनाना होना चाहिए. यही इस विचार का सबसे महत्वपूर्ण तार्किक आधार है.

जनता की राय—सांसद का विवेक—संसदीय बहस—संवैधानिक मर्यादा. इन चारों के बीच संतुलन ही डिजिटल जनभागीदारी को सफल बना सकता है.

इस व्यवस्था को चरणबद्ध तरीके से लागू करने पर भी विचार किया जा सकता है. पहले चरण में डिजिटल चौपाल को नागरिक संवाद और स्थानीय समस्याओं के लिए शुरू किया जाए. दूसरे चरण में सांसद की गतिविधियों और क्षेत्रीय मुद्दों की सार्वजनिक जानकारी उपलब्ध कराई जाए. तीसरे चरण में महत्वपूर्ण विधेयकों पर नागरिकों से डिजिटल परामर्श लिया जाए. इसके बाद प्राप्त अनुभवों के आधार पर इसकी भूमिका को और व्यापक बनाया जा सकता है.इसलिए डिजिटल चौपाल केवल तकनीक का प्रयोग नहीं है. यह भारतीय जनभागीदारी की पुरानी भावना को आधुनिक लोकतंत्र से जोड़ने का प्रयास है. लोकतंत्र का भविष्य केवल अधिक मतदान में नहीं, बल्कि अधिक जागरूक, अधिक सहभागी और अधिक जवाबदेह नागरिक में है. यदि नागरिक को पाँच वर्ष में एक बार अपना प्रतिनिधि चुनने के बाद पूरे कार्यकाल में अपनी बात रखने, अपने प्रतिनिधि के काम को देखने और महत्वपूर्ण नीतिगत विषयों पर अपनी राय देने का अवसर मिलता है, तो लोकतंत्र का रिश्ता चुनाव से आगे बढ़कर निरंतर सहभागिता का रिश्ता बन सकता है.